न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः ।

अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः विदधति सोपधिसन्धिदूषणानि ।।४५।।

अन्वय-

परेषु निकृतिपरेषु सत्सु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं न क्षमम् हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधिसन्धिदूषणानि विदधति ।।४५।।

अर्थ –

नीचता पर उतारू शत्रुओं के रहते हुए आप जैसे परम तेजस्वी के लिए तेरह वर्ष की अवधि की रक्षा की बात सोचना अनुचित है, क्योंकि विजय के अभिलापी राजा अपने शत्रुओं के साथ किसी न किसी बहाने से सन्धि आदि को भंग कर ही देते है ॥४५॥

टिप्पणी-

जो शक्तिमान होते हैं, उनके लिए सर्वदा अपना कार्य करना ही कल्याणकारी है, समय अथवा प्रतिज्ञा की रक्षा कायरों के लिए उचित है। काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास अलंकार का युगपत् प्रयोग यहाँ हुआ है। इसमें पुष्पिताग्रा छन्द है।

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं

शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।

रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ

दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूय: ॥४६॥

अन्वय–

विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नम् दीप्तिसंहारजिह्मम् शिथिलवसुम् रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानम् त्वाम् दिनादौ दिनकृतम् इव लक्ष्मी: भूय: समभ्येतु ॥४६॥

अर्थ-

दैव और कालचक्र के कारण अगाध विपत्ति समुद्र में डूबे हुए, प्रताप में नष्ट हो जाने में अप्रसन्न, विनष्ट धन-सम्पत्ति वाले एवं शत्रुरूपी अन्धकार को विनष्ट कर उदित होने वाले आप को प्रात: काल के (कालचक्र के कारण पश्चिम समुद्र में निमग्न, प्रकाश एवं आतप के नष्ट हो जाने से निस्तेज एवं अन्धकार को दूर कर उदित होने वाले) सूर्य की भाँति राज्यलक्ष्मी (कान्ति) फिर से प्राप्त हो ॥४६॥

टिप्पणी-

रात्रि भर पश्चिम ने समुद्र में डूबे हुए निस्तेज सूर्य को प्रातः काल उदित होने पर जिस प्रकार पुनः उसकी कान्ति प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार इतने दिनों तक विपत्तियों के अगाध समुद्र में डूबे हुए निस्तेज एवं निर्धन आप को भी आपकी राज्यलक्ष्मी जल्द प्राप्त हो – यह मेरी कामना है।

सर्ग का आरम्भ श्री शब्द से हुआ था और उसका अन्त भी लक्ष्मी शब्द से हुआ। मंगलाचरण के लिए ऐसा ही शास्त्रीय विधान है। यहाँ मालिनी छन्द है। यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।